



राष्ट्रीय आन्दोलन में अरविंद घोष के दार्शनिक पृष्ठभूमि एक समीक्षात्मक अध्ययन

अंजली शर्मा

शोधार्थी, इतिहास विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय,
कामेश्वरनगर, दरभंगा



सारांश :

राष्ट्रीय आन्दोलनों और क्रांतियों की दिशा और आशय समझने के लिए उनकी मूल वैचारिकताओं का स्वीकरण के लिए उनकी मूल वैचारिकताओं का स्पष्टीकरण आवश्यक है इसी प्रकार भारतीय स्वाधीनता संघर्ष के महत्व और प्रकृति के समुचित मूल्यांकन के लिए इस देश की दार्शनिक पृष्ठभूमि का विश्लेषण और स्पष्टीकरण जरूरी है। जिन नेताओं ने 20वीं शताब्दी में संघर्ष में भाग लिया उनमें एक नेता श्री अरविंद घोष (जन्म : 1872), इन्होंने स्वतंत्रता आन्दोलनों में शीर्षस्थ भाग लिया। वे केवल राजनेता ही नहीं थे। वे जनमत के भी महान निर्माता थे और उनके महत्व को हमें जहाँ उनके द्वारा संगठित कार्य-कलापों के प्रकाश में आंकना चाहिए वहीं उनके नैतिक सामाजिक एवं राजनैतिक विचारों के द्वारा भी हिन्दुओं और मुसलमानों के विचारों में जहाँ कुछ आश्चर्यजनक समानताएँ थी वहीं शासन-तंत्र संबंधी समस्याओं तथा स्वाधीनता संघर्ष के तौर-तरीकों और युक्तियों पर उनके दृष्टिकोणों में भिन्नता भी थी। परन्तु इनमें से अपनी निष्ठा के अनुसार भारतीय मुक्ति के ध्येय के लिए जूझने वालों को प्रेरणा प्रदान का रहा था।

प्रस्तावना :

राष्ट्रवादी आन्दोलन में अचानक फट पड़ने वाले ज्वालामुखी की भाँति आरंभ होने वाले सबसे कम आयु के नेताओं में अरविंद घोष ही थे। वह उन प्रतिभासंपन्न व्यक्तियों में सबसे अधिक कुशाग्रबुद्धि थे जिन्होंने सरकार को चुनौती दी और जन-आन्दोलन को दिशा दिखाई। चितरंजन दास ने, जिन्होंने प्रसिद्ध अलीपुर बम केस में अरविंद घोष की वकालत की उन्हें 'देशभक्ति का कवि, राष्ट्रवाद का मसीहा और मानवता का प्रेमी' कहा। था और 'इतिहास के उच्च न्यायालय' से अपील की थी कि वहीं अरविंद घोष के संबंध में अपना निर्णय दें।

अरविंद घोष के विचारों के गंभीर चिंतन के बिना स्वतंत्रता संघर्ष के इतिहास को समझ पाना असंभव है। उन्होंने समग्र भारत के राजनीति में महत्वपूर्ण योगदान दिया। बाल गंगाधर तिलक और अरविंद घोष ने इस संघर्ष के आदर्श और कार्यक्रम की परिकल्पना की जिसे महात्मा गाँधी के मार्गदर्शन में व्यावहारिक स्वरूप मिला जिसकी परिणति स्वाधीनता प्राप्ति में हुई। निःसंदेह जिस राष्ट्रीय लहर ने संपूर्ण देश के मानस को आन्दोलित कर दिया उसके पृष्ठ में एक सक्षम प्रभाव अरविंद घोष का था।

अरविंद घोष की प्रतिभा अद्वितीय थी। उनकी मेधा की गहराई और परिव्यापित असीम थी। वह अनेक भाषाओं के प्रकांड पंडित थे। अंग्रेजी प्राय उनकी मातृभाषा के समान थी और उसकी शब्दावली एवं शैली पर उन्हें अप्रतहत अधिकार था। लैटिन का उन्हें बहुत अच्छा ज्ञान था और उन्हें ग्रीक के विश्वविद्यालयीन अध्ययन के लिए छात्रवृत्ति मिली थी। फ्रेंच की उन्हें यथेष्ट जानकारी थी और जर्मन एवं इतावली भाषाओं से भी उनका परिचय था। भारत लौटने पर उन्होंने बांग्ला और संस्कृत सीखी और दोनों पर उनका अच्छा अधिकार हो गया।

इन भाषाओं के माध्यम से उन्हें भारतीय और यूरोपीय साहित्य और इतिहास का असाधारण रूप में व्यापक ज्ञान हो गया। अतः अरविंद घोष के अध्ययन ने उन्हें मानव मनोविज्ञान की विस्तृत जानकारी प्रदान की। उनकी साहित्यिक व्यस्तता ने उनके मन की स्वाभाविक संवेदनाओं, कल्पनाशक्ति और भावनात्मक प्रवृत्तियों को

और पैनापन प्रदान किया। परिणामस्वरूप इतिहास और दर्शन के उनके अध्ययन पर उनके आवेगात्मक एवं तर्कोपरि दृष्टिकोण का गहरा रंग चढ़ता गया।

इतिहास में उन्हें महान क्रातियों ने बहुत आकर्षित किया। उदाहरणार्थ अधीनिया के सामाजिक और राजनैतिक संगठन में क्लीस्थेनीज द्वारा आरंभ की गई क्रांति अथवा रोम के संविधान में ग्राची द्वारा दिए गए परिवर्तन। जोन ऑफ आर्क उन्हें इसलिए अपील करती थी कि उसने अपने वीरतापूर्ण प्रयासों से फ्रांस को अंग्रेजों से मुक्त करने का बीड़ा उठाया था। अमरीकी क्रांति तथा आयरलैण्ड में स्वशासन के लिए हुए आन्दोलन के प्रति भी उनके मन में बहुत सराहना थी। उन्होंने 'मुक्तिदाता पारनेल' पर जिससे लोग 'अत्यन्त आतंकित थे और अत्यधिक घृणा करते थे', एक कविता लिखी। एक अन्य कविता का विषय भी आयरलैण्ड के राष्ट्रवादी थे— 'वे देशभक्त जिन्होंने माँ एरिन को रक्तस्नात प्रताड़ित बंधनग्रस्त पाया और उसे भयानक एवं समीचीन कोलाहलयुक्त कुलिश से शस्त्र—सज्जित किया।'

अरविन्द घोष का हृदय भावनाओं का उबलता हुआ लावा था। उनकी चाह और अचाह दोनों ही आग्नेय लावा थी। भारत से प्यार उन्हें भगवान के प्रति संपूर्ण आत्मनिवेदन के समान लगता था। विदेशी शासन से उनको वैसी ही घृणा थी जैसी उस पुत्र को लगे जो अपनी माँ की छाती पर किसी दानव को खुली कटार लिए बैठ देख रहा। हो। राष्ट्रीय सम्मान की उनकी भावना बहुत उदत्त थी और मानवोचित स्तर से युक्त आवरण के प्रति उन्हें बहुत रोष होता था। उनमें अदम्य साहस था। अपने देशवासियों को गलती करते हुए देखकर वह तनिक भी भयभीत हुए बिना उनकी प्रताड़ना करते थे और सरकार के भारत विरोधी कार्यों की आलोचना की। वह न केवल अपने देशवासियों की दुर्बलताओं से और उन लोगों के विरुद्ध रूष्ट रहते थे जिन्होंने भारत को स्वाधीनता से वंचित किया था वरन् वह ऐसे कर्तव्य के लिए भी अधीर रहते थे जो भारत को फिर से शीघ्र स्वतंत्रता दिला दे। उनके लेखन और भाषण उनकी आत्मा को आन्दोलित करने वाले। तनावों और अंतर्द्वंद्वों को प्रतिबिंबित करते हैं।

इन सबके बावजूद उनमें ऐसा कोई प्रतिपूरक तत्त्व था जो उनका मानसिक संतुलन बनाए रखता था। वह स्वप्नशील, रहस्योन्मुख, आदर्शवादी थे। समय—समय पर उन्हें निभृत एकांत और गहन नीरवता की असामान्य अनुभूतियाँ हुआ करती थी।

वेदान्त और श्रीमद्भगवद्गीता के उनके अध्ययन से उनकी रहस्योन्मुख प्रवृत्तियाँ पुष्ट हुईं। बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय की कृतियों से वह बहुत प्रभावित हुए और वैयक्तिक आचरण तथा राष्ट्रीय प्रश्नों पर उनके अभिमत का निर्माण बहुत कुछ बंकिम के उपन्यासों 'आनन्द मठ' तथा 'कृष्ण चरित्र' और 'धर्म तत्त्व' के अध्ययन द्वारा हुआ। बंकिम के बारे में उन्होंने लिखा है, "मुझे लगता है कि बंकिम ने अपने ढंग से वह पूर्णता प्राप्त की थी जो प्लेटो को या शिसरो और टैसियस को मिली थी या जिसे वाल्टेभर फ्लावेयर अथवा अनातोले फ्रांस ने फ्रेंच साहित्य में प्राप्त किया था।"⁽¹⁾

बंकिम से उन्होंने नैतिक शक्ति के तीन गुर प्राप्त किए (1) बलिदान और निष्ठा (2) आत्मानुशासन और संगठन (3) देशभक्ति का धर्म। 'वन्दे मातरम्' गीत में भारत का जो चित्र उभरता है उसके संबंध में उन्होंने लिखा है—

"जब एक महान देवत्व और मातृशक्ति के रूप में माँ के सौन्दर्य का आविर्भाव होता है और वह मन पर अधिपत्य होता है और वह मन पर आधिपत्य तथा हृदय पर अधिकार जमा लेती है, तब माँ की भक्ति और सेवा में संपूर्णतः समर्पित व्यक्ति के भय और कामनाएँ बिलुप्त हो जाती हैं और ऐसी देशभक्ति जन्म लेती है जो चमत्कार दिखाती है और एक अभिशप्त राष्ट्र का परित्राण करती है।"⁽²⁾

अरविन्द घोष के क्रियात्मक जीवन के तीन चरण हैं। पहले चरण का आरंभ 1889 में उनके कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में प्रवेश से होता है और 1905 में समाप्त होता है। यह तैयारी का काल था जिसमें वह मुख्यतः अध्ययन प्रयोग, अध्यापन और चिंतन में लगे रहे। दूसरा चरण 1905 में आरम्भ हुआ और 1910 में समाप्त हुआ। यह संक्षिप्त किन्तु तुफानी समय था जो भारतीय इतिहास का एक आसाधारण रूप में महत्वपूर्ण काल था। वह राष्ट्रीय आन्दोलन के एकमात्र था सर्वप्रमुख नेता तो नहीं थे परन्तु उसके सबसे अधिक प्रभावोत्पादक प्रवक्ता अवश्य थे।

मार्च, 1942 में स्टेफर्ड क्रिप्स ब्रिटिश सरकार से यह अनुरोध प्रस्तुत लेकर आए कि भारत युद्ध प्रयत्नों में सहयोग दे। अरविन्द घोष ने प्रस्ताव का स्वागत किया और क्रिप्स को बधाई संदेश भेजा। उन्होंने

राजगोपालचारी और मुंजे को भी व्यक्तिगत संदेश भेजे और एक दूत को अपना संदेश देकर दिल्ली में कांग्रेस कार्यसमिति के पास भेजा जिसमें उक्त प्रस्ताव स्वीकार कर लेने के लिए आग्रह किया गया था। लेकिन उनका परामर्श नहीं माना गया।

जब 15 अगस्त, 1947 को भारत को सत्ता का हस्तांतरण हुआ तो अरविंद घोष ने राष्ट्र को संबोधित करते हुए अपनी प्रसन्नता प्रकट की, कि उनके महान स्वप्नों में से कम से कम एक को मूर्त रूप मिल गया है और अपने अन्य स्वप्नों के चरितार्थ होने की आशा व्यक्त की। अतः स्वाधीनता आन्दोलन के इतिहास के लिए प्रथम दो चरण ही संगत हैं और कठिनाई तथा झंझावत के उन वर्षों में उनके राजनैतिक विचारों का बहुत अधिक महत्व रहा।

कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में प्रदेश से पूर्व अरविन्द घोष को भारत से अलग-अलग रखा गया। लंदन के सेंट पाल स्कूल में जिसमें होस्टल की व्यवस्था नहीं थी। वह अपने अध्ययन में डूबे रहे और अपने सहपाठियों या अन्य लोगों से मिलने का मौका उन्हें नहीं मिला। इसका एक कारण उनके पास रुपये-पैसे की कमी तथा तंगहाली भी थी। विश्वविद्यालय में वह एक अधिक विस्तृत वातावरण में रहे। वह भारतीय विद्यार्थियों से मिलते-जुलते रहते, नियमित रूप से 'बंगाली' के उद्धरण का उल्लेख होता। इतिहास में कातियों के विवरण पढ़कर उनकी विद्रोही भावनाएँ जाग्रत हो चुकी थी और उनमें अपनी मातृभूमि की मुक्ति के लिए तीव्र अभिलाषा उत्पन्न हुई। 1893 और 1994 में उन्होंने जो लेख बंबई के 'इन्दु प्रकाश' में अपने मित्र देशपांडे के आग्रह पर लिखे वे उनके पौराणिक चिंतन का प्रतिफल हैं। उन्होंने कांग्रेस के प्रति अपनी निराशा व्यक्त की जो "स्वच्छ जल का कूप, युद्ध की पताका और मंत्री का पवित्र मंदिर"⁽³⁾ बनने में असफल रही थी।

अरविन्द घोष का विचार था कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपने अनुकरणात्मक आदर्शों के कारण अपनी पदवी खो दी है वह 'अभरतीय' हो गई है। वह एक साम्राज्यवादी अधिपत्य और शस्त्रबल द्वारा शासित अधीनस्थ लोगों के बीच संबंधों की किसी भी राजनैतिक दल को यह करना चाहिए कि वह जनजागरण के आधार पर देश की शक्ति का निर्माण करे अपने पांव आप खड़े हो और स्वावलंबन का ऐसा सशक्त आन्दोलन विकसित करे जो ब्रिटेन को विवश कर दे कि वह भारत के स्वाधीनता के अधिकार को माने।

अरविन्द घोष को विश्वास था कि भारत की स्वाधीनता की समस्या केवल राजनैतिक नहीं है, वह कहीं अधिक गहरी है। वस्तुतः राजनैतिक पक्ष तो कहीं अधिक व्यापक नैतिक पक्ष का एक अंग है। वह समग्र सामाजिक जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग है। परन्तु समाज, व्यक्ति का ही विराट स्वरूप है। परिणामतः समाज को समझने के लिए व्यक्ति की प्रकृति और कृत्ति को समझना आवश्यक है।

इस प्रकार स्वतंत्रता सेनानी के लिए यह समझना आवश्यक है कि वह क्या संघर्ष कर रहा है और इसे किस उद्देश्य के लिए संघर्ष करना चाहिए और भारत में यह विचार कि राजनैतिक उद्देश्यों को व्यापक दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में परखा जाना चाहिए। परंपरा-पोषित भी है और यह परंपरा महाभारत के युद्ध में अर्जुन की जिज्ञासा से लेकर अब तक चली आ रही है। उन्होंने अपने पत्रिका 'अर्थ' में 1914-1921 तक प्रकाशित किया। यद्यपि यह कहा जा सकता है कि इस दर्शन की रूपरेखा उनके मन में पहले से ही थी। जबकि वह 'वन्दे मातरम्' 'कर्म योगिन और धर्म' (बांग्ला) का सम्पादन कर रहे थे। उन्होंने उक्त पत्रों में जो विचार व्यक्त किए थे वे निश्चित रूप से उनके दर्शन की ओर इंगित करते थे।

अरविन्द घोष का कथन है कि मुक्त मनुष्य वह है जो "परमात्मा-चेतना में स्थित हो चुका है, अनंत से तदाकार हो चुका है और जिस सीमा तक अभी भी जीवन और कर्तव्य को अंगीकार करता है वह अपने अंतरतम के उस प्रकाश और शक्ति के माध्यम से कर्म उस प्रकाश और शक्ति के माध्यम से कर्म करता है, जो उसकी प्रकृति के मानवीय यंत्रों की प्रेरणा है। इस आध्यात्मिक रूपांतरण और उपलब्धि का व्यापक सूजीकरण उसकी आत्मा, मन, प्राण और क्रिया की संपूर्ण मुक्ति के रूप में व्यक्त होता है।"⁽⁴⁾ इस आध्यात्मिकरण की उपलब्धि का साधन वही योग है। अरविन्द घोष ने जर्मन इतिहासकार लैम्पैरान्त द्वारा निर्दिष्ट योजना के अनुरूप मानव विकास के चरणों को मान्यता दी। उपरत योजना के अन्तर्गत पाँच मनोवैज्ञानिक चरण हैं : प्रतीकात्मक (धार्मिक) निदर्शक (नैतिक) पारंपरिक वैयक्तिक और आत्मपरक। विश्व इस समय विकास के चौथे चरण में है जिसके अन्तर्गत व्यक्ति स्वाधीन और समान है और उसका सामाजिक प्रतिरूप राष्ट्र और राष्ट्रीय राज्य है।

अन्य सभी दर्शनों की भांति अरविन्द दर्शन की आकाट्यता और तार्किकता पर संदेह किया जा सकता है खासतौर पर इसलिए और कि यह अधिकांशतः सत्य की। अन्तः प्रज्ञात्मक कौधों और आत्मपरक कार्य-करण

संबंधों पर आधारित है। तर्क विज्ञान और दर्शन, आध्यात्म के प्रांगण में प्रवृष्टि नहीं हो सकते और इसलिए अरविन्द घोष ने स्पष्टतः यह स्वीकार किया, दर्शनशास्त्र। मैं आपको विश्वास दिलाकर कहना चाहूँगा कि मैं दार्शनिक कभी नहीं, कभी नहीं, कभी नहीं था— हालाँकि मैंने दर्शन लिखा है जो एक अगल कहानी है। वह मैं। एक कवि था, एक राजनीतिज्ञ दर्शनिक नहीं।⁽⁶⁾

अरविन्द घोष अपने जीवन के आरंभ में ही बंकिम से प्रभावित हो चुके थे। अतः बंकिम कृत आन्दोलन को आगे बढ़ाने में उन्होंने बहुत उत्साह दिखाया। उनके लिए धर्म भारतीय समस्याओं की गुत्थी सुलझाने की कुंजी बन गया और उन्होंने इतिहास, संस्कृति एवं समस्या तथा भारत के राजनैतिक प्रयासों को धार्मिक दर्शन है कि उन्होंने अतिमानव की अवधारणा बंकिम से प्राप्त की।

अरविन्द घोष के तीन मुख्य उद्देश्य के प्रति अपना जीवन अर्पित किया था। ये थे— राष्ट्रवाद, स्वाधीनता और जीवन आध्यात्मिकरण। उनका राष्ट्रीय अपनी प्रकृति और अभिप्राय में उनकी अदभूत प्रतिभा की छाप लिए हुए था। लेकिन राष्ट्रीय आन्दोलन के अन्य नेताओं की भाँति उन्होंने भी राष्ट्रवाद का स्त्रोत और स्वरूप इतिहास में खोजने का प्रयास किया। उन्हें भारतीय इतिहास में राष्ट्रीयता की ओर अनिवार्य प्रवृत्ति दिखाई दी। उसकी जड़े वैदिक ऋचाओं में प्रच्छन्न थी जिनमें सम्राट और चक्रवर्ती की अवधारणाएँ थी। और अश्वमेध तथा राजसूय यज्ञों का उल्लेख था।

अरविन्द घोष अपनी आस्था में इतने दृढ़ थे कि उन्होंने अपने आदर्श से झुकने के बजाए कांग्रेस से नाता तोड़ लेना श्रेयस्कर समझा। उन्होंने 1893 में ही कांग्रेस की निंदा अराष्ट्रीय कहकर की थी और 1906-10 में उन्होंने उनके द्वारा 1906 में कलकत्ता कांग्रेस में स्वीकृत 'स्वराज्य' के लक्ष्य से फिर जाने की अशोभन और भीरु कोशिश की खिल्ली उड़ाई और इसे छुटपने की प्रवृत्ति बताते हुए कहा था कि "वह गुलामी के स्तर से उपर उठने में असमर्थ है। उसके विचार उन कीड़े-मकोड़ों की तरह है जो एक प्रकार का आत्मविहीन कातर स्वार्थ के जड़ भार से दबकर धरती पर रेंग रहे है।"⁽⁶⁾

दूसरे राष्ट्रीय आन्दोलन को जनता के सम्मुख यह आदर्श रखना चाहिए कि "मनुष्य और मनुष्य में जाति और जाति में वर्ग और वर्ग में सभी प्राणियों से साररूप में समानता है और जैसा कि तिलक ने कहा है ये सब राष्ट्र के रूप में अनुभूत 'विराट पुरुष' के भिन्न-भिन्न किन्तु एक ही शरीर के अंग हैं।"⁽⁷⁾

तीसरे स्वराज्य को भारत की पहली और अन्यतम आश्वयकता स्वीकार कर लेने के बाद उसकी प्राप्ति के लिए सम्मिलित प्रयास आवश्यक था। इसका अभिप्राय आधिपत्य की शक्तियों के विरुद्ध संपूर्ण युद्ध था। स्वाधीनता प्राप्ति के लिए हिंसा को एक साधन बनाया वर्जित नहीं था।⁽⁸⁾

परिणामतः अरविन्द घोष ने ऐसे स्वयंसेवकों के दल तैयार करने के लिए जिन पर भविष्य का सशस्त्र विद्रोह आधारित हो सके गुप्त समितियों का जाल बिछाने को बढ़ावा दिया। राष्ट्रीय मुक्ति के सिलसिले में यह काम उनके भाई बरिन्द्र घोष को सौंपा गया। लेकिन उनके कार्यक्रम का मुख्य भाग अहिंसक प्रतिरोध था। उसका उद्देश्य एक वैकल्पिक जनसत्ता को संगठित करना था जो क्रमशः राष्ट्रीय जीवन के सभी क्षेत्रों से विदेशियों को हटाकर उनकी जगह भारतीय परिस्थितियों में प्रशासन को पंगु बनाने के लिए संगठित रूप में ऐसे सभी काम करने से इनकार किया जाए जिनसे देश के शोषण वाणिज्य को या प्रशासन में ब्रिटिश हुक्मरान को सहायता मिलती हो।⁽⁹⁾

अहिंसक प्रतिरोध वस्तुतः स्वावलंबन द्वारा आत्मविकास था। आत्मविकास की नीति के अन्तर्गत सभी क्षेत्र आ जाते है "न केवल स्वदेशी और राष्ट्रीय शिक्षा प्रत्यंत राष्ट्रीय प्रतिरक्षा राष्ट्रीय मध्यस्थता न्यायालय स्वास्थ्य और सफाई अकाल के विरुद्ध उपाय या अकाल राहत, जो कुछ भी हमारे हाथ करने के लिए बढ़े या जो कुछ भी करना आवश्यक है।"⁽¹⁰⁾

निष्कर्षतः एक पराधीन राष्ट्र में प्रत्येक नागरिक का प्राथमिक कर्तव्य किसी। भी साधन द्वारा और कितना भी कर्तव्य करके देश की स्वाधीनता प्राप्त करना है और यह कर्तव्य अन्य सभी विचारों से आगे रहना चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक सुदृढ़ केन्द्रीय संगठन आवश्यक है जो राष्ट्र की आकांक्षा की पूर्ति करें।

संदर्भ-संकेत :

- (1) अरविंद घोष, 'एसेज', खंड- III, पृ०- 330
- (2) अरविंद घोष, 'बंकिम, तिलक, दयानंद', पृ०- 13

- (3) हरिदास और उमा मुखर्जी, 'श्री अरविंदोज पालिटिकल थाट', न्यू लैम्पस फार ओल्ड, पृ०- 68- 69
- (4) अरविंद घोष, 'द लाइफ डिवाइन', खंड- 2, पृ०- 712
- (5) श्री अरविन्द, 'आन हिमसेल्फ एंड आन मदर', पृ०- 348
- (6) हरिदास तथा उमा मुखर्जी, 'श्री अरविन्दोज पॉलिटिकल थाट', पृ०- 177
- (7) वही, पृ०- 127
- (8) हरिदास और उमा मुखर्जी, 'श्री अरविंदो एंड न्यू थाट इन इंडियन पॉलिटिक्स', पृ०- 159
- (9) हरिदास तथा उमा मुखर्जी, 'श्री अरविन्दोज पॉलिटिकल थाट', पृ०- 46
- (10) श्री अरविंद, 'द डाक्ट्रिन आफ पैसिव रेसिस्टेंस', पृ०- 73-74